IJAER/September-October 2017/Volume-6/Issue-5 ISSN: 2278-9677

International Journal of Arts & Education Research

शेष यात्रा अपने को पाने की खोज

डॉ- आभा जैन

हिन्दी विभाग

बाबा गंगादास राजकीय महिला महाविद्यालय शाहपुरा जयपुर

बदलते युग संदर्भों और एक बनती पहचान के बावजूद आज भी भारतीय नारी तब तक मिटने को तैयार है, जब तक पुरुष का अहम, उसका दम्भ और महत्त्वाकांक्षाओं के दलदल में फैला हुआ उसका परिवर्तनकामी मन उसे झटके दे देकर झकझोरने पर विवश न कर दे। भारतीय संस्कारों ने तो नारी को पुरुष की दासी बनने और समर्पिता स्वरूप की ही शिक्षा दी है किन्तु परिस्थितियों के बदलाव, मूल्यों के टकराव और कुचले हुए अहं से उसी नारी के भीतर से जिस नयी नारी-प्रतिमा का निर्माण होने लगा है वह उसे 'आत्महत्या' की ओर प्रेरित नहीं करता, अपितु आत्मनिर्भर होकर नारी अस्मिता को नयी 'आइडेन्टिटी' देने का प्रयास बन जाता है। यही वह संक्रमणशील देहरी है, जहाँ पति-परित्यक्ता होने पर पुरानी नारी का जीवन समाप्त प्राय, अस्तित्त्वहीन हो जाता था, वहीं आज की नारी इस बिन्दु पर आकर जीवन की शेष यात्रा को नयी आँख और समझदारी से आरम्भ करती है। यह शुरुआत नयी संभावनाओं और आत्मविश्वास की परिचायक है।

एक लम्बे अन्तराल के बाद उषा जी का उपन्यास 'शेष यात्रा' सामने आया । इस उपन्यास में लेखिका ने अपने अधिकांश पूर्व साहित्य की भाँति भारतीय संस्कृति बनाम पाश्चात्य संस्कृति का चित्रण किया। उपन्यास की नायिका अनु भारतीय मध्यवर्गीय परिवार की लड़की है जिसका विवाह प्रवासी डॉक्टर प्रणव से हो जाता है वह भी आकस्मिक रूप से। प्रणव विवाह के लिए भारत आता है, किसी वकील की लड़की को देखना है किन्तु अनु की एक झलक देखकर ही उससे विवाह करने को तैयार हो जाता है। विवाह के तुरन्त बाद अनु प्रणव के साथ विदेश चली जाती है। इसके बाद की सारी कथा विदेश में ही चलती है। पूर्वदीप्ति शैली के माध्यम से लेखिका ने यथावसर भारत के नगरों, अनु के पूर्व परिवेश आदि का वर्णन किया है। उपन्यास के अन्त तक पहुँचते प्रणव अपनी आदत के मुताबिक रूमी नाम की लड़की से प्रेम करने लगता है और अनु से तलाक ले लेता है। संक्षेप में यही इस उपन्यास की कथा है।

पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध में भारतीय युवा वर्ग किस तरह अपने को खो देता है इसका प्रमाण अनु स्वयं है। वह प्रणव के साथ उसके पैसों में पूरी तरह डूब चुकी है। यांत्रिक भौतिक सभ्यता की सभी सुख सुविधाएँ उसे उपलब्ध हैं जिनसे वह काफी खुश है। भारत आने पर भी वह काफी खरीददारी करती है और वापसी में हवाई जहाज में बैठी अपनी साड़ियों को याद कर मन ही मन खुश होती रहती है। अनु लेखिका के पिछले उपन्यास की नायिका राधिका (स्कोगी नहीं राधिका? की अपेक्षा सरल है, अधिक समर्पिता है, उसका समर्पित रूप विक्षुब्ध कर देने वाला है, यहाँ तक कि प्रणव द्वारा छोड़ दिये जाने पर, उसकी भ्रमर वृत्ति से परिचित होने पर भी वह प्रणव को अपनाना चाहती है, उससे आश्रय की भीख मांगती है देवी देवताओं की मनौतियाँ मानती है। इडी और दिव्या दोनों ही उसे सजग और आत्मनिर्भर होने के लिए प्रेरित करती हैं पर जैसे वह अपना सती-सावित्री वाला रूप त्यागना ही नहीं चाहती।

अन्त में दिव्या अवश्य उसमें अधिकार भावना जगाने में सफल होती है और उसे पैरों पर खड़ा होने स्वाभिमानी बनने में मदद देती है। रुकोगी नहीं राधिका?' की राधिका जहाँ हर निर्णय स्वयं लेती है और अन्त में तो पापा तक की बात को नकारकर कहती है कि जो आप चाहते हैं वही हमेशा क्यों हो? क्या मेरी इच्छा कुछ भी नहीं है, मैं आपकी बेटी हूँ यह ठीक है पर अब मैं बड़ी हो चुकी हूँ और जो मैं चाहूंगी वही करूंगी। इसके ठीक विपरीत अनु कहीं भी स्वयं निर्णय

नहीं लेती, लेना नहीं चाहती अथवा लेखिका ने वह अवसर ही नहीं दिया फलतः प्रणव पर निर्भर रहती है, यहाँ तक कि लेडीज लंच में क्या बनेगा, यह भी वह प्रणव से ही पूछती है। कभी निर्णय लेना पड़ जाता है तो घबरा जाती है। मछलियाँ कितना बड़ा झूठ की विजी अनु से कहीं ज्यादा सशक्त थी, भारत के लिए प्रस्थान करने से पूर्व मुकी को झटका देने की सामर्थ्य उसमें है, मुकी परास्त हो जाती है। विजी का व्यक्तित्व सशक्त व विद्रोही है जबकि अनु का लिजलिजा । अनु कहीं भी प्रणव का विरोध नहीं करती, प्रणव के संबंधों से भिज्ञ होने पर भी वह सोचती है कि "मैं उससे कुछ नहीं कहूँगी, प्रणव मुझे सिर्फ आश्रय दे दे। अनु में कहीं भी अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति नहीं दिखाई गई है। वह न तो पूर्ण रूप से भारतीयता में जी पाती है और न ही पाश्चात्य सभ्यता में। वह अपने को कई बार बदलना चाहती है और इसकी वह कोशिश भी करती है, लिबास के माध्यम से वह भले ही पाश्चात्य संस्कृति से जुड़ गई हो पर विचारों से वह भारतीय ही लंगती है और भारतीयता में भी उसका आधुनिक रूप दिखाई नहीं देता बल्कि प्राचीन काल की पति परायणा सीता सावित्री वाला रूप ही झलकता है।।

प्रणव दम्भी और छली है उसका विद्रूप अहंकार उपन्यास में कई जगह दिखाई देता है। उसका अकारण ही निर्मम व कोमल हो जाना खटकने वाला है। वह भी कहीं न कही अनु से जुड़ा हुआ अवश्य है पर फिर भी तलाक लेने की कार्यवाही करता है जबकि उसके लिए यह कतई आवश्यक नहीं है। घर में अनु के साथ रहते हुए भी विवाहेतर संबंधों को बनाए रखने पर अनु कहीं भी उसके मार्ग में बाधक नहीं बनती न बनना ही चाहती है पर फिर भी लेखिका ने अन्त में तलाक की आवश्यकता महसूस की है। पुरुष की भ्रमर-वृत्ति को लेखिका ने इस उपन्यास में भी उजागर किया है। इससे पहले प्रकाशित कहानी संग्रह 'कितना बड़ा झूठ' की कहानियों में विवाहेतर काम संबंधों का पर्याप्त चित्रण हुआ है पर कहीं भी पति-पली ने एक दूसरे पर दोषारोपण नहीं किया, बड़ी सहजता से उन संबंधों को स्वीकृति दी जबकि इस उपन्यास में लेखिका वापसी की ओर लौटती प्रतीत होती है। प्रणव अनु को बार-बार अपना व्यक्तित्व स्वयं बनाने को कहता है पर अनु पग-पग पर उससे पूछती है उससे राय लेती है, उस पर निर्भर रहती है वह कहीं भी अनु का विरोध नहीं' करता, सिर्फ कहता ही है। प्रणव एक सफल डॉक्टर है उसकी आर्थिक स्थिति भी काफी सुदृढ़ है ऐसे में उसका डॉक्टरी छोड़ फिल्में बनाना एक सनक ही लगती है।

प्रकारान्तर से लेखिका का यह उपन्यास वर्तमानकालिक पश्चिमी सभ्यता से आक्रान्त प्रवासी भारतीय युवकों के नये व्यक्तित्वों से टकराने वाली भारतीय युवतियों के भारतीय संस्कारों के संघर्ष की कहानी कहता है। यों तो पूर्वकथितानुसार लेखिका का समूचा साहित्य आधुनिक मूल्यों का ऐसा दस्तावेज है जो भारतीय बनाम पश्चिमी संस्कृति के स्वीकार और त्याग की उस नाजुक संवेदना का स्पर्श करता है जो व्यक्ति को न देशी ही रहने दे पाती है न विदेशी ही बना पाती है, परिणामतः त्रिशंकु सा व्यक्ति को अनिवार्य टूटन, अकेलेपन और भौतिकतावादी मृग मरीचिका को झेलना पड़ता है। उषा जी के पिछले उपन्यास की नायिका राधिका स्वदेश और विदेश के 'कल्चरल शॉक्स' के बीच लेखिका की भाँति झूलती हुई धीरे-धीरे भारतीय परिवेश प्रभाव को नकार कर विदेशी संस्कृति के उस रूप को स्वीकार कर लेती है जो नारी के व्यक्तित्व को स्वतन्त्र इकाई मानता है किन्तु शायद लेखिका का अन्तर्मन अभी भी राधिका के 'नकार' को पूर्णता नहीं दे पाया था, वर्षों के भारतीय संस्कार विस्मृत नहीं हो सके तभी इतने वर्षों के अन्तराल के बाद भी उन्होंने अनु के भारतीय संस्कारों को झिंझोड़ कर जगाया है। अनु उनकी पिछली नायिकाओं से भिन्न है।वह राधिका' जैसी शालीन, गंभीर नहीं वह मछलियों की 'विजी' की अगली कड़ी जरुर प्रतीत होती है -विजी' जो मनीश से टूटकर मुकी' जैसे सशक्त व्यक्तित्व को मात देकर भारत लौट आती है, हालांकि वह विदेश में नौकरीपेशा होती है किंतु अनु चार-पाँच वर्ष अपने डॉक्टर पति के राज्य की रानी बनकर इतनी आत्ममुग्ध हो चुकी है कि उसे पति के कृत्रिम प्यार और सुरक्षा के पीछे की स्थितियों का विश्लेषण करने की आवश्यकता ही नहीं होती, फिर वह संस्कारी भारतीय भी है तभी प्रथम प्रहर में ही अकेले और असुरक्षित रह जाने का यथार्थ उसे पागलखाने पहुंचा देता है। शायद यहाँ लेखिका ने नारी की पुरातन भावुकता पर प्रहार करना चाहा है।

भारतीय 'अरेंज्ड मैरिज' एक ऐसी व्यवस्था है जो स्त्री-पुरुष को एक दूसरे की मानसिक बुनावट के समझे बगैर स्त्री को पति नामक संस्था से अनुबंधित कर दी जाती है, उसे तो चुनाव की छूट तक नहीं है। बाह्य सौन्दर्य को कैश' करवाने वाली युवती-पत्नी पति के 'ड्राइंग रूम' की 'शोपीस' बनकर रह जाती है, इससे अधिक वह बनना नहीं चाहती, चाहे भी तो पति बनने का अवसर नहीं देता जबकि सालों-साल विदेशी सभ्यता में पला युवक कभी किसी एक का होकर रहने के विश्वास को शराब में घोलकर बहुत पहले ही पी चुका होता है। अतः हकीकत की पर्त दर पर्त खुलने पर कड़वाहट का साक्षात्कार पति की हर आह से बंधने वाली प्रणयिनी नारी को पुरुष के पाँवों पर गिड़गिड़ाकर अपने अज्ञात अपराधों की क्षमा माँगने को प्रेरित नहीं करता। अपितु मानसिक क्षोभ के भूकम्पी झटकों से गुजरकर वह आँखों के आँसू पोंछकर उठ खड़ी होती है। 'शेष यात्रा' की अनु को स्वयं को संभालने में बहुत वक्त लगता है। वह लेखिका की अन्य नायिकाओं की भाँति सशक्त और आत्मसजग नहीं है- वह हर स्थिति को स्वीकार कर पति के प्रति समर्पिता है- शायद अतिभावुकता का यह रूप उसकी पृष्ठभूमि और अतीत की देन रहा हो, किन्तु कहीं भी यह नहीं लगता कि पाँच वर्ष के विदेशी प्रवास ने उसे अपनी पहचान करने को प्रेरित किया हो- जो असहज लगता है। प्रणव की विमुखता भी कहीं एकांगी हो गई है उसके कैरियर और महत्त्वाकांक्षाओं तथा ऐय्याश जीवनचर्या में अनु कहीं भी बाधा नहीं बनी है। उसने अपने पत्नीत्व की दुहाई मात्र दी है- आजीवन साथ रहने के लिए भारतीय संस्कारवश, किन्तु हक छीनने का पुरजोर संघर्ष उसके व्यक्तित्व में चिंगारी बनकर कहीं भी प्रस्फुटित नहीं हुआ। न जाने लेखिका ने भारतीय नारी को इतना दब्बू और अंध समर्पित क्यों बना दिया जबकि उनके पिछले नारी चरित्र एक प्रखर संवेदनशील व्यक्तित्वों की गवाही देते हैं। अनु और प्रणव को घेरने वाले पात्रों में भी भारतीयता का अभाव ही दिखाई देता है। जितने भी प्रवासी भारतीय दिखाए गए हैं, वे कहीं भी भारतीयता से नहीं जुड़े हुए हैं। पार्टियों में बनने वाला खाना जरूर भारतीय लगता है। प्रवासी भारतीयों की समस्याएँ इस उपन्यास में नहीं उठाई गई है। लगता है 'कल्चरल शॉक' की स्थिति अब नहीं रही, लेखिका का अतीत के प्रति सिर्फ मोह ही रह गया है। वह भारत से स्मृति मात्र से ही जुड़ी हुई प्रतीत होती है और स्मृति को बार-बार दोहराना भर चाहती है। परिवेशगत बारीकी का अभाव इस उपन्यास में परिलक्षित होता है। अंग्रेजी के शब्दों का कम से कम प्रयोग किया गया है। कथा में एक स्थान पर अनु कहती है कि हिंदी बोले काफी समय बीत गया किन्तु पूरे उपन्यास में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग से बचने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। कई जगह लेखिका भाषा के प्रति दुराग्रही भी हो गई हैं। फलतः वह दिव्या के विदेशी मित्रों से भी हिंदी के वाक्य ही बुलवाती है और ऐसे वाक्य अंग्रेजी के अनुवाद ही प्रतीत होते हैं। शिल्प में कसाव का अभाव है। उपन्यास न लगकर यह रचना लम्बी कहानी प्रतीत होती है। कथा का जहाँ अंत है उसके बाद की घटना से कथा की शुरुआत की गई है बीच का सारा वर्णन पूर्वदीप्ति शैली में किया गया है पर यहाँ भी लेखिका सफल नहीं हो पाई हैं। वह कब स्मृत्यावलोकन कर रही हैं कब वर्तमान में जी रही हैं इसका पता ही नहीं चलता। यहाँ चेतना प्रवाह पद्धति द्वारा नायिका की क्षण-क्षण बदलती स्मृति रेखाओं को बिम्बों के रूप में प्रकट किया गया है। घटनाओं के तेजी से घटित होने के कारण पात्रों पर होने वाली प्रतिक्रियाओं के चित्रण का इस उपन्यास में अभाव ही है। लेखिका ही आसान विवरण देती चलती हैं। हां ,प्रतीकों का प्रयोग बहुत सफल बन पड़ा है । लेखिका ने अनु के जीवन में आने वाले परिवर्तनों को प्रतीकों के द्वारा स्पष्ट किया है "फ्रिज में रखे सूखे नींबू, पिलपिले संतरे अनु के जीवन की उमंगों के बासीपन और निरर्थकता को द्योतित करते हैं। अनु के मन का अन्तर्द्वन्द्व स्वेटर के बुनने और उधेड़ने के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। वह अनु जो कभी भी सही बुनाई न कर पाई थी वही अनु जीवन की गुत्थियों को बुन-बुन कर उधेड़ डालती है और वह सारी 'कला' उसकी पहुँच के बाहर होती जाती है। सबसे सशक्त प्रतीक है- किवाड़ का खुला बन्द होना, आहट की प्रतीक्षा का होना न होना-और इन सबसे परे अन्त का दृश्य आधे किवाड़ का खुला होना, मगर प्रणव की प्रतीक्षा का समाप्त हो जाना, जो न केवल अनु के अब तक के जीवन के सूनेपन का परिचायक है अपितु भीतर से निकली स्वावलम्बी अनु के जीवन की स्थिरता और शेष यात्रा के आरम्भ की

भी सूचना है। ये प्रतीक एक ओर जहाँ परिवेश को सजीव बनाते हैं वहीं चारित्रिक आरोह-अवरोह की भौतिक सीमाओं से परे व्यक्तित्व के 'विविध शेड्स' को भी उजागर कर देता है।

कुल मिलाकर इस उपन्यास को 'मछलियाँ' कहानी का विकास तो कहा जा सकता है पर पूर्व रचित दोनों उपन्यास (पचपन खंभे लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका? इस कृति से कहीं अधिक सशक्त है। इन उपन्यासों में एक विद्रोह है जो संवेदना के स्तर पर झकझोरता है जबकि इस उपन्यास में उसका अभाव है। फिर भी इस उपन्यास की उपलब्धि है लेखिका को कथा-यात्रा के विकास का वह पड़ाव -जहाँ अनु जैसी 'टिपीकल' भारतीय आदर्शवादी नारी का एक नया ठहरा हुआ स्वाभिमानी रूप दिखाई देता है- "वह दरवाजा बंद नहीं करती, आधा किवाड़ खोले हुए खड़ी रहती है, प्रणव के चले जाने के बाद भी, पर अब उसे किसी की प्रतीक्षा नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- शेष यात्रा उषा प्रियम्वदा
- आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ- बच्चन सिंह
- विवेक के रंग- डॉ- देवी शंकर अवस्थी
- समकालीन साहित्य एक नई दृष्टि - डॉ- इंद्रनाथ मदान
- हिंदी उपन्यास परंपरा और प्रयोग -डॉ- सुभद्रा
- हिंदी उपन्यास प्रेम और जीवन डॉ -शांति भारद्वाज
- हिंदी कहानी अपनी जबानी - डॉ- इंद्रनाथ मदान
- हिंदी कहानी एक अंतरंग परिचय- उपेंद्रनाथ अश्क
- हिंदी कहानी में यथार्थवाद -डा- नूर जहां
- हिंदी लघु उपन्यास- घनश्याम मधुप